शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No-281-285
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

1. विजेंद्र सौरभ
एम.ए., नेट, शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

2. प्रो. सतीश कुमार राय
शोध-निर्देशक, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

Corresponding Author :

विजेंद्र सौरभ
एम.ए., नेट, शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

'कसौटी' का समापन अंक : एक विहंगावलोकन

'कसौटी' अपने समय की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका के रूप में मान्य हुई किन्तु इसको लम्बा जीवन नहीं मिला। इसके मात्र पन्द्रह अंक निकले किन्तु वे सारे अंक अपनी स्तरीय सामग्री और सुनियोजित संपादन के कारण विशिष्ट बन गये। 'कसौटी' का पन्द्रहवाँ अंक समापन अंक था। यह बीसवीं शताब्दी की कालजयी कृतियों पर केन्द्रित था। यह समापन अंक अक्टूबर-दिसम्बर 2002 में प्रकाशित हुआ। इसके संपादकीय में उन्होंने इसके बन्द होने के सम्बन्ध में पाठकों को सम्बोधित करते हुए लिखा-"अनेक पाठकों और लेखकों ने 'कसौटी' के बन्द होने के समाचार को दुखद माना है और हमसे अनुरोध किया है कि हम इसे जारी रखें। एक आलोचना पत्रिका को उसके प्रचार-प्रसार की समुचित व्यवस्था के अभाव में भी उन्होंने जिस तरह अपनाया है, वह हमारे लिए एक अनुभव है और हमारे भीतर की हर तरह की निराशा को छाँट देनेवाला फिर भी अपनी सीमाओं के कारण हम उसे जारी रखने में असमर्थ हैं। उन्होंने 'सरस्वती' (प्रयाग), 'वीणा' (इंदौर) और 'नई धारा' (पटना) जैसी पत्रिकाओं के अनन्त काल तक जारी रहने का हश्र देखा है, इसलिए हमने तय किया कि 'कसौटी' को अब बन्द ही हो जाना चाहिए। हमें इस आप्तवचन से समर्थन मिला कि 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्'। हम अपने पाठकों और उन लेखक बंधुओं का हृदय से धन्यवाद करते हैं, जिन्होंने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद हमारी पत्रिका को अपना सहयोग दिया। कहना व्यर्थ है कि उसके बिना उसने जितना जिया, उतना जी सकना भी संभव न होता। जो पत्रिकाएँ इतिहास के खास मोड़ पर निकलती हैं और कमोबेश अपना कार्य-भार पूरा कर बंद हो जाती हैं, शायद उन्हें ही पाठकों और लेखकों का ऐसा निर्व्याज सहयोग मिलता है...।"[1]

इस अंक के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है-"'कसौटी' के इस समापन-अंक को हमने बीसवीं शती की हिंदी की कालजयी कृतियों पर केन्द्रित किया है। 'बीसवीं शती' और 'कालजयी कृतियाँ' परस्पर विरोधी शब्द हैं, क्योंकि बीसवीं शती अभी-अभी गुजरी है और कोई भी कृति अनेक शतियों से गुजरने के बाद ही कालजयी बनती है। इस स्थिति में हमारा निवेदन है कि हमने इतने कठोर अर्थ में 'कालजयी' शब्द को नहीं लिया और पच्चीस-पचास वर्षों से भी जो कृति अपना महत्त्व बरकरार रख

सकी है और विवादास्पद होते हुए भी संभावनाओं के साथ अपने भीतर से नए-नए अर्थ प्रकट करती रही है, उसे कालजयी मान लिया है। पृष्ठ संख्या की सीमा तय रहने के कारण हम पिछली शती की कालजयी कृतियों में से विभिन्न विधाओं की सिर्फ 29 पुस्तकें और 19 कहानियों को विचारार्थ चुन सके हैं। बच्चन की आत्मकथा के चार खंडों में दो खंड- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' और 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर' आए, लेकिन उन्हें हमने एक ही माना है। जो कृतियाँ चुनी गई हैं अथवा पिछली शती की कालजयी कृतियों की यह जो सूची है, वह कभी भी विवाद से परे नहीं हो सकती है। यह अधूरी तो है ही, निश्चय ही ऐसी भी है कि कुछ लोग उसमें से एक कृति को हटाकर दूसरी को रख सकते हैं। कृतियों के चुनाव में हमारा दृष्टिकोण यह रहा है कि हमने लोकप्रियता के साथ साहित्यिक स्तरीयता को भी महत्त्व दिया है। इसी कारण हमें 'चित्रलेखा' जैसे उपन्यास, 'मधुशाला' जैसी कविता-पुस्तक और 'आवारा मसीहा' जैसी जीवनी को जोड़ना पड़ा। वैसे कोई चाहे तो इन कृतियों की साहित्यिक उत्कृष्टता पर जो प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है, उसके आगे भी प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं। साहित्य का क्षेत्र नितांत अनिश्चित नहीं है, फिर भी वह बाकी सभी विषयों के क्षेत्र से अधिक खुला है। कविता के अंतर्गत हमारा इरादा 'तार सप्तक' को रखने का था, लेकिन चूँकि वह सात कवियों की कविताओं का संकलन है, इसलिए उसके स्थान में अंततः 'हरी घास पर क्षण भर' को रखा गया, जो निस्संदेह हिंदी कविता में एक युगांतर उपस्थित करनेवाली कृति है। प्रो. नलिन विलोचन शर्मा व्यंग्य में अज्ञेय को नई कविता का 'लोकप्रिय' कवि कहा करते थे। हम गंभीर अर्थों में अज्ञेय को नई कविता का लोकप्रिय कवि मानते हैं, साथ ही यह भी कि उक्त कृति उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है।"[2]

इस अंक में बीसवीं शताब्दी की चुनी हुई छह कृतियों की गम्भीर समीक्षा की गई। 'साकेत' पर स्वयं सम्पादक नन्दकिशोर नवल ने लिखा है। यह खड़ी बोली का श्रेष्ठ महाकाव्य है। रामकथा पर आधारित इस कृति की कथा तो पुरानी है किन्तु व्यथा पुरानी नहीं है। यह उपेक्षिता उर्मिला के महत्त्व के स्थापन की रचनात्मक पहल है। रवीन्द्र नाथ और महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखों ने गुप्तजी को इसकी रचना के लिए प्रेरित किया। 1931 में यह कृति प्रकाशित हुई। यह समय छायावाद के उत्कर्ष का समय था। हिंदी साहित्य गांधीवाद से प्रभावित हो रहा था और पौराणिक चरित्रों को आधुनिक संदर्भों में परखने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। 'साकेत' आधुनिक महाकाव्य है। आधुनिक बोध की झलक इसमें स्पष्ट परिलक्षित होती है। नवल जी लिखते हैं— "साकेत इसिलिए आधुनिक काव्य नहीं है कि इसके पात्रों का व्यक्तित्व मूलतः मानवीय है, बल्कि इसलिए भी है कि उनकी प्रतिक्रिया हमेशा यथार्थवादी होती है। हमने मान लिया है कि आदर्श और यथार्थ अनिवार्यतः परस्पर विरोधी होते हैं, लेकिन गुप्तजी इस कृति में अनेक नाज़ुक स्थलों पर भी इस मान्यता को झुठलाते हैं।"[3]

नवल जी ने 'साकेत' के सम्बन्ध में पूर्व के आलोचकों के मतों का भी परीक्षण किया है। इस कृति की प्रासंगिकता को रेखांकित किया है। डॉ. नगेन्द्र के कथन को उद्धृत करते हुए-"डॉ. नगेन्द्र ने ही लिखा है कि गुप्तजी वास्तुकार तो थे, लेकिन रत्नकार नहीं, और फिर, वे कथा-शिल्पी तो थे लेकिन शब्द-शिल्पी नहीं। यह बात सवा सोलह आने गलत है, क्योंकि गुप्तजी का शब्द-भंडार ही विपुल नहीं था, उनमें शब्द गढ़ने, अपनी जरूरत के मुताबिक उन्हें ढाल लेने और फिर उनका प्रयोग करने की भी अद्भुत क्षमता थी। कुछ विद्वानों ने प्रचार किया है कि उनमें बीच-बीच में संस्कृत के ऐसे अप्रचलित शब्द आते हैं जो ठोकर की तरह लगते हैं और वे तुकों पर अतिरिक्त ध्यान ही नहीं देते हैं, उन्हें अतिरिक्त महत्त्व भी देते हैं, जिससे अनेक बार उनकी कविता निरी तुकबंदी या निरा तुकांत पद्य होकर रह जाती है। यह प्रचार निराधार नहीं है, लेकिन जब हम उसे अंतिम सच्चाई के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, तो उससे अनेक सकारात्मक पहलू दृष्टि से ओझल रह जाते हैं। यह सही है कि वे 'राज्य' से तुक मिलाने के लिए 'आज्य' शब्द ले आते हैं, पर देखने की बात यह है कि वह पूरी उक्ति में नग की तरह जड़ा जाता है या नहीं, और यदि उसके प्रयोग से अवरोध उत्पन्न हुआ है, तो उस अवरोध का कोई सौन्दर्यात्मक मूल्य है या नहीं। स्मरणीय है कि शाब्दिक माधुर्य और कोमलता की अतिरिक्त रूप में चिंता छोड़कर गुप्तजी ने हिंदी के समस्त शब्द-भंडार के प्रयोग की ही प्रवृत्ति नहीं थी, उसके विस्तार का भी प्रयास था। इस दृष्टि से वे तुलसीदास के बाद हिंदी के दूसरे कवि हैं, जिसने शब्दों के प्रति कोई छुआछूत का भाव नहीं रखा, यानी यह कि यह शब्द काव्यात्मक है और यह

नहीं।"[4]

'कामायनी' पर रामस्वरुप चतुर्वेदी ने लिखा है। उन्होंने 'कामायनी' पर पूर्व के आलोचकों के मतों की समीक्षा की है। निराला की काव्यकृति 'अनामिका' पर बच्चन सिंह ने लिखा है। ज्ञातव्य है कि निराला की पहली 'अनामिका' 1923 में और दूसरी 1938 में आई। दूसरी 'अनामिका' की कुछ महत्वपूर्ण कविताओं जैसे— प्रेयसी, राम की शक्तिपूजा, सरोज स्मृति और तोड़ती पत्थर को आलोचक ने अपने मूल्यांकन का आधार बनाया है। दिनकर की 'उर्वशी' पर दिनेश्वर प्रसाद ने लिखा है। 'उर्वशी' के काव्यरुप को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसके सम्बन्ध में दिनेश्वर प्रसाद ने कहा है— "जहाँ तक 'उर्वशी' का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि इसके शिल्प का विकास नाटक और काव्य की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और टकराहट से हुआ है। नाटक और काव्य की होड़ और टकराहट में इसमें नाटक बार-बार काव्य से हारता रहा है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि रचना में कथोपकथन का उपयोग काव्य की सुविधा के रुप में हुआ है। इसलिए मेरी दृष्टि में इसे काव्य-नाटक या गीति-नाट्य न कहकर नाट्य-काव्य कहना अधिक सही होगा।"[5]

'हरी घास पर क्षण भर' प्रयोगवाद के प्रखर प्रयोक्ता अज्ञेय का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है। इस संग्रह की प्रमुख कविताओं पर परमानन्द श्रीवास्तव ने गम्भीर विचार किया है। अपने विचार-क्रम में उन्होंने भी पूर्ववर्ती आलोचकों के मन्तव्यों को ध्यान में रखा है। मुक्तिबोध के प्रतिनिधि काव्य-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की प्रतिनिधि कविताओं के संवेदना और शिल्प-विधान पर राजेन्द्र कुमार ने प्रकाश डाला है। ये कविताएँ हैं— 'पता नहीं', 'भूल-गलती', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'अंधेरे में'। निस्संदेह यह संग्रह मुक्तिबोध की काव्य-प्रवृत्ति से पाठकों को परिचित कराता है। इस अंक में चयनित छह काव्य-कृतियाँ बीसवीं शताब्दी की काव्य-यात्रा की दिशा का बोध कराती हैं। काव्य-मर्मज्ञों की दृष्टि में यह चयन सीमा का बोधक हो सकता है किन्तु इन कृतियों की महत्ता और कालजयिता को लेकर कोई आपत्ति नहीं हो सकती है।

इस अंक में दस उपन्यासों का मूल्यांकन प्रतिनिधि आलोचकों ने किया है। ये उपन्यास और उनके आलोचक हैं-'गोदान' (अपूर्वानन्द), 'त्यागपत्र' (निर्मला जैन), 'शेखर एक जीवनी' (विजयमोहन सिंह), 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (भगवान सिंह), 'मैला आँचल' (नित्यानन्द तिवारी), 'बूंद और समुद्र' (रामचन्द्र तिवारी), 'राग दरबारी' (सुवास कुमार), 'तमस' (शिवकुमार मिश्र) और 'ज़िन्दगीनामा' (श्याम कश्यप)। 'झूठा सच' उपन्यास के कालजयी वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए मधुरेश ने लिखा है-"यशपाल साम्राज्यवादी नीतियों और भारतीय नेताओं के अवसरवादी गठबन्धन के परिणामस्वरूप भारतीय जनता के साथ हुए छल को गहरे दर्द के साथ उद्घाटित करते हैं। जनता की यातना, मोहभंग और हताशा के बावजूद वे उसके पुनर्वास के लिए किए जाने वाले संघर्ष और आस्था पर अधिक बल देते हैं। जीवन की व्यापकता और वैविध्य की दृष्टि से यह एक सम्पूर्ण उपन्यास है। देश के विभाजन की पृष्ठभूमि में 'झूठा सच' जैसी सम्पूर्णता शायद ही किसी उपन्यास में हो।"[6]

'मैला आँचल' हिन्दी का श्रेष्ठतम आंचलिक उपन्यास है। सर्वप्रथम इसके वैशिष्ट्य को नलिन विलोचन शर्मा ने रेखांकित किया था। 1954 में प्रकाशित इस उपन्यास की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है। प्राय: समस्त आलोचकों ने इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। नित्यानन्द तिवारी ने इसकी कुछ ओझल विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है-"'मैला आँचल' की कुछ और महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जिन पर अब तक विचार नहीं हुआ है। इसकी ठेठ देशीयता (आंचलिकता) विश्व नागरिकतावादी विचारधारा के सामने चुनौती की तरह खड़ी है। वह चाहे जितनी पिछड़ी हुई हो, उसकी जड़ें हैं, परम्परा है, सांस्कृतिक समृद्धि है और इन्हीं कारणों से वह सजीव तथा भिन्न है। यह भिन्नता ठोस मानवीय वास्तविकता है। 'मैला आँचल' की आंचलिकता स्वाधीनता-आन्दोलन की सन्तान है। स्वाधीनता-आन्दोलन मुख्य रूप से राजनीतिक होते हुए भी सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में अलग-अलग तरह के लोगों द्वारा अपनी-अपनी तरह से लड़ा जा रहा था। मेरीगंज के लोग भी पूरी लड़ाई लड़ रहे थे, सभी क्षेत्रों में अपनी तरह से। उन्हें मानवतावादी होने के लिए व्यक्तिगत परिवर्तन और क्रान्तिकारी प्रक्रिया के भीतर से गुज़रना ही है। स्वाधीनता-आन्दोलन यदि राष्ट्रवादी और मानवतावादी है, तो 'मैला आँचल' की आंचलिकता में भी स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रवाद और मानवतावाद के नए प्रसंग, आवेग तथा उद्वेग की

प्रस्तावना है।"[7]

'राग दरबारी' 1968 में प्रकाशित हिन्दी का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है— हिन्दी समालोचना के पुराने प्रतिमानों को चुनौती देने वाला व्यंग्य से परिपूर्ण उपन्यास। इस पर लिखना भी खूब गया है। 'कसौटी' के इस अंक में इसके चिरस्थायी महत्त्व के कारणों की ओर संकेत करते हुए सुवास कुमार ने लिखा है— "बुद्धिजीवियों की विडम्बना पर यह तल्ख व्यंग्य इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह किसी को नहीं बख्शता—अपने आप को भी नहीं। शहर से गाँव और गाँव से शहर तक कुसंस्कारों का ही प्रसार और बोलबाला होता गया है। ऐसे में 'पलायन संगीत' का व्यंग्य वस्तुतः हताशामूलक नहीं होकर हताशा तोड़ने का संकेत करता है। यह सिर्फ हमारे बुद्धिजीवियों के ही नहीं, शासकों, प्रशासकों के विचारहीन विचारों की भी पोल खोलता है। 'राग दरबारी' बीसवीं सदी के महत्वपूर्ण हिन्दी उपन्यासों में इसलिए आता है क्योंकि इसने हमारे राष्ट्रीय जीवन की निरर्थकता के विशाल बंजर में हँसी-मुस्कराहट के रूप में जिजीविषा बोने की भरपूर कोशिश की थी। इसी में उसकी सार्थकता है और महत्त्व भी।"[8]
भीष्म साहनी का 'तमस' उपन्यास भी हिन्दी की कालजयी कृति है। 1973 में प्रकाशित यह उपन्यास विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिकता पर केन्द्रित है। 1975 में इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस पर गोविन्द निहलानी द्वारा टी.वी. धारावाहिक का प्रसारण भी हुआ था। इस उपन्यास पर प्रसिद्ध आलोचक शिव कुमार मिश्र की निष्कर्षपरक टिप्पणी है— "'तमस' भीष्म जी की कालजयी कला-कृति है। जब तक दुनिया है और दुनिया में मनुष्य नामक प्राणी है, तमस की सम्भावनाएँ बनी रहेंगी, परन्तु उसके साथ इसी मनुष्य के जरिए जगाए हुए ज्योति के वे स्फुलिंग भी रहेंगे, जो उस तमस में सुराख करेंगे, उसे आहत करेंगे, उसे आदमी की नियति नहीं बनने देंगे।"[9]

बीसवीं शताब्दी हिन्दी कहानी के उद्भव, विकास और उत्कर्ष का काल है। 2010 में कमलेश्वर के सम्पादन में चार खण्डों में शताब्दी की कालजयी कहानियों का संकलन किताबघर प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था। 'टोकरी भर मिट्टी' (माधवराव सप्रे) से लेकर 'लेकिन कामरेड' (मधु कांकरिया) तक इनमें 114 कहानियाँ संकलित की गई थीं। इसके पूर्व 'कसौटी' ने उन्नीस कहानियों को कालजयी के रूप में मान्यता दी थी। विवेकी सिंह ने अपने लेख में जिन उन्नीस कहानियों को अपने विवेचन का आधार बनाया था, वे हैं— 'उसने कहा था' (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी), 'कफन' (प्रेमचन्द), 'आकाशदीप' (जयशंकर प्रसाद), 'चतुरी चमार' (निराला), 'पत्नी' (जैनेन्द्र), 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ' (यशपाल), 'गैंग्रीन' (अज्ञेय), 'डाची' (उपेन्द्रनाथ अश्क), 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' (रेणु), 'गुलकी बन्नो' (धर्मवीर भारती), 'मिस पाल' (मोहन राकेश), 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर), 'परिंदे' (निर्मल वर्मा), 'जिन्दगी और जोंक' (अमरकान्त), 'पिता' (ज्ञानरंजन), 'नन्हो' (शिवप्रसाद सिंह), 'कोसी का घटवार' (शेखर जोशी), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी) और 'वापसी' (उषा प्रियंवदा)। इन कहानियों के मूल्यांकन के बाद विवेकी सिंह ने निष्कर्ष देते हुए लिखा है— "ये उन्नीस कहानियाँ इस दृष्टि से हैरत में डालने वाली हैं कि हिन्दी की कहानी विधा नई थी, फिर भी उसमें न केवल उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी गईं, बल्कि उसने गम्भीर साहित्य-विधा के रूप में स्वीकृति भी प्राप्त की। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय जैसे कहानीकार किसी भी भाषा के लिए गौरव का विषय हो सकते हैं। नई कहानी के दौर में तो रेणु, राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा और भीष्म साहनी से लेकर अमरकान्त-मन्नू भण्डारी तक ऐसे कहानीकार पैदा हुए जिन्होंने गुण और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से इस विधा को समृद्ध किया। इस आन्दोलन में सर्जनात्मक ऊर्जा से सम्पन्न कहानीकारों की एक ऐसी पीढ़ी सामने आई जैसी शायद ही किसी भाषा में आई हो। उपर्युक्त उन्नीस कहानियों के कालजयी होने के कारणों की जब हम तलाश करते हैं, तो जो बात उभरकर सामने आती है, वह यह कि ये कहानियाँ अपनी जमीन की कहानियाँ हैं, जिनके रचनाकारों ने सर्जनात्मकता का दामन कभी नहीं छोड़ा।"[10]
इस अंक में पाँच नाटकों को कालजयी मानते हुए उनके वैशिष्ट्य का तार्किक विवेचन किया गया है। ये नाटक हैं- 'प्रसाद' कृत 'चन्द्रगुप्त' (गिरीश रस्तोगी), 'जगदीशचन्द्र माथुर' कृत 'कोणार्क' (श्रीकान्त किशोर), 'धर्मवीर भारती' कृत काव्य-नाटक 'अंधा युग' (सिद्धनाथ कुमार), मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' (जावेद अख्तर खाँ) और भीष्म साहनी कृत 'हानूश' (अविनाश चन्द्र मिश्र)। यह चयन महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद सीमित है। भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क और सुरेन्द्र वर्मा को भी इस सूची में रखा जाना चाहिए था। इससे नाटकों की विकास-यात्रा और उसकी विभिन्न धाराओं का बोध हो सकता था।

इतिहास-आलोचना के अन्तर्गत पाँच कृतियों की कालजयिता पर विचार हुआ है। ये कृतियाँ हैं— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'कबीर', रामविलास शर्मा कृत 'निराला की साहित्य-साधना' (द्वितीय खण्ड), मुक्तिबोध कृत 'एक साहित्यिक की डायरी' और नामवर सिंह कृत 'कविता के नए प्रतिमान'। इन कृतियों के आलोचक हैं— मैनेजर पाण्डेय, पुरुषोत्तम अग्रवाल, शम्भुनाथ, शरद रंजन शरद और तरुण कुमार। चयन और विवेचन दोनों ही दृष्टियों से ये ग्रन्थ प्रासंगिक हैं और इतिहास और आलोचना-दृष्टि की प्रखरता का बोध कराने वाले भी।

अन्तिम खण्ड में कालजयिता से परिपूर्ण तीन कथेतर ग्रन्थ हैं। इनमें पहला है राहुल सांकृत्यायन कृत गौरव कृति— 'वोल्गा से गंगा'। इसकी महत्ता को रेखांकित करते हुए मदन कश्यप ने लिखा है— "'वोल्गा से गंगा' इतिहास भी है और कथा भी। इसमें उपादान इतिहास के तथ्यों को बनाया गया है, लेकिन खोज मनुष्य की की गई है। यही कारण है कि तथ्यों के बदल जाने के बावजूद इनका महत्त्व कम नहीं हुआ है, क्योंकि इसकी कहानियाँ अलग-अलग समय के मनुष्य के जीवन, संघर्ष और संस्कृति को उजागर करने में सफल हुई हैं।"[11]

'कलम का सिपाही' प्रेमचन्द की जीवनी है, जो उनके छोटे सुपुत्र अमृत राय द्वारा लिखी गई है। अपनी प्रामाणिकता और रोचकता के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस अंक में प्रकाशित अपने लेख में रविभूषण ने लिखा है— "'कलम का सिपाही' हिन्दी की महत्त्वपूर्ण जीवनी है। यह जीवनी प्रेमचन्द का, उनके साहित्य का और उनके युग का एक प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करती है।"[12]

इस अंक के अन्तिम लेख बच्चन की आत्मकथा के पूर्वार्द्ध ('क्या भूलूँ क्या याद करूँ' और 'नीड़ का निर्माण फिर') में गोपेश्वर सिंह ने लिखा— "यह सदी की सबसे लोकप्रिय आत्मकथा है। पिछली सदी के चौथे-पाँचवें दशक में बच्चन ने हिन्दी कविता का परिदृश्य बदला और उसे व्यापक लोकप्रियता दिलाई। कविता के ग्राहक का एक बड़ा वर्ग तैयार किया। हिन्दी के कवि का साधारण जीवन लोगों की दिलचस्पी का इस हद तक विषय हो सकता है, यह बहुतों के लिए आज भी एक अबूझ पहेली है। हमारा अनुमान है कि उनकी आत्मकथा के खासकर पहले दोनों खण्डों में साधारण जीवन के यथार्थ का असाधारण जादू है, जिसे बच्चन अपनी लेखन-कला के जरिए सम्भव बनाते हैं।"[13]

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यह अंक बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-साहित्य की उपलब्धियों, प्रवृत्तियों और लेखन की दिशाओं का बोध कराता है। इसका पुस्तकाकार प्रकाशन भी हो चुका है। यह इतिहास-ग्रन्थ भी है, आलोचना-ग्रन्थ भी और सन्दर्भ-ग्रन्थ भी।

सन्दर्भ :

1. मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो... (सम्पादकीय), कसौटी, अंक-15, पृष्ठ-06.
2. वही, पृष्ठ-07.
3. साकेत, कसौटी, अंक-15, पृष्ठ-23.
4. वही, पृष्ठ-32.
5. उर्वशी, वही, पृष्ठ-73.
6. झूठा सच, वही, पृष्ठ-168.
7. मैला आँचल, वही, पृष्ठ-189.
8. राग दरबारी, वही, पृष्ठ-203.
9. तमस, वही, पृष्ठ-216.
10. 19 कहानियाँ, वही, पृष्ठ-255-256.
11. वोल्गा से गंगा, वही, पृष्ठ-375.
12. कलम का सिपाही, वही, पृष्ठ-391.
13. बच्चन की आत्मकथा : पूर्वार्द्ध, वही, पृष्ठ-405.

•